॥ ओ३म् ॥

प्रभु से विनय

हे महा प्रभो अक्रतेः। तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाला, जीवन को उदबुद्ध करने वाला है, तेरी ही महती अनुपम कृपा से यह हमारा जीवन उदबुद्ध हो रहा है। आज तेरी ही रचना हमें व्याप रही है, तेरी महानता में हम सदैव रमण करने वाले हैं। हमें जो नाना प्रकार का अज्ञान आता है वह हमें आपसे दूरी कर देता है। तो प्रभु हम चाहते हैं कि सदैव प्रकाश में रमण करते रहें, आनन्द में ही रमण करते रहें क्योंकि हमारा जीवन सदैव आनन्द के लिए उत्पन्न होता है, जीवन की प्रतिभा को जानने के लिए उत्पन्न होता है। हमें प्रभु! ऐसा महान् सामर्थ्य प्रदान करो जिससे हम आपकी महती अनुपम कृपा के द्वारा आपकी महिमा को जानते हुए अपने मनुष्यत्व को जानते चले जाएँ। हे प्रभु! यह आपकी अनुपम देन है। जब हम यह विचारते हैं कि यह जगत् आपसे ही व्याप्त हो रहा है तो प्रभु! हम कहाँ जाएँ, किस आँगन में रमण करें।

पूज्यपाद-गुरुदेव

अंक : 538 कुल पृष्ठ संख्या समग्र अंक : 613
वर्ष : 45 44 समग्र वर्ष : 52

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1. प्रभु से विनय	पूज्यपाद-गुरुदेव	3
2. अनुक्रम		4
3. देव दानव संघर्ष	पूज्यपाद-गुरुदेव	5-18
4. आर्यों का भूषण	पूज्यपाद-गुरुदेव	19-33
5. ऋषियों के उद्‌गार		34
6. Lord Krishna	Pujyapad Gurudev	35-37
7. दान, पुस्तकों की सूची व प्राप्ति के स्थान तथा सूचना इत्यादि		38-42

श्रावणी-पर्व

परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा और पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की पावमानी प्रेरणा से रक्षाबन्धन के शुभावसर पर दिनाँक 7-08-2017 दिन सोमवार को प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी लाक्षागृह, बरनावा में सामवेद ब्रह्म-पारायण महायज्ञ का आयोजन श्री गाँधी धाम समिति द्वारा किया जा रहा है। आप सभी इस यज्ञ में अपने परिवार, सगे-सम्बन्धियों एवम् मित्रों सहित सादर आमन्त्रित हैं।

श्री गाँधी धाम समिति (पञ्जी.)

।। ओ३म् ।।

देव दानव संघर्ष

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्पराओं से माना गया है कि आज हम वेदरूपी अनुपम प्रकाश को अपनाते चले जायें क्योंकि जिस प्रकाश को अपनाने से हमारे जीवन क्या, राष्ट्रवाद क्या, सर्वस्व पवित्र हो जाता है। इसी को अपनाने से मानव देवता बन जाता है। दैत्य और देवताओं का सँघर्ष परम्परा से चला आया है। जहाँ देवता रहते हैं वहाँ दैत्य भी होते हैं। मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहा करते हैं कि आधुनिक काल में तो दैत्यों की प्रवृत्तियाँ बहुत प्रदीप्त होती चली जा रही हैं। महानन्द जी को कोई वाक्य उच्चारण करने के लिए समय प्रदान नहीं किया जा रहा है! इनकी तो इच्छा सदैव रहती है कि मैं अपने विचार प्रकट करूँ परन्तु मुझे इनका हृदय सुन्दर प्रतीत नहीं होता।

मेरे प्यारे भद्र पुरुषों! जिस वाक् में मानव के हृदय से उद्गार जब उत्पन्न होते हैं यथार्थ तो होते हैं परन्तु यदि यथार्थ वाक्यों से वायुमण्डल में या हृदय में एक वेदना उत्पन्न होती हो तो वह कोई महान् सुन्दर नहीं होता। इसलिए बेटा! "श्रवंगति निश्चय शान्तः" तो मेरे प्यारे! भद्र पुरुषों! आज मुझे इस सम्बन्ध में उच्चारण क्या करना है। सँसार में दैत्यों और देवताओं का सँघर्ष परम्परा से चला आया है। देवता कौन हैं और दैत्य कौन हैं? हमारे यहाँ कुछ ऐसा माना गया है कि एक समय दैत्य और देवताओं का सँघर्ष हुआ। जिस समय सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ, तो उस समय दैत्य और

देवताओं ने इस सँसाररूपी समुद्र का मन्थन किया और समुद्र को मन्थन करने के पश्चात् उसमें से रत्नों की उत्पत्ति हुई, उसमें से अमृत की भी उत्पत्ति हुई।

अमृत कुम्भ

ऐसा कहा जाता है कि कुदिची और उदिची दो मातायें कहलाती हैं। कुदिची दैत्यों की माता और उदिची देवताओं की माता कहलाती है परन्तु जब दैत्यों और देवताओं का संघर्ष हो गया, कहते हैं कि उसी काल में देवताओं ने उस अमृत के कलश को, अमृत के कुम्भ को अपने में अपना लिया। अपना लेने के पश्चात् कहते हैं विष्णु भगवान् ने महान् ऐसा रूप धारण करके वह अमृत का कुम्भ देवताओं को अर्पित करके राहु के दो विभाग बनाए और दैत्यों को शान्त करके और देवताओं को कुम्भ को अर्पित करा करके उन्होंने अपने आसन से प्रस्थान किया। आज के वेद पाठ में "कुम्भान् वृणि अस्ति सुज्यागृणामि" ऐसा कुछ मन्त्र आता है उसी के आधार पर हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने कल्पना की और कल्पना करते हुए कुछ ऐसा कहा है कि वह जो दोनों माताएँ, देखो दैत्य और देवताओं की कुदिची और उदिची दोनों ने अपना वह अद्भुत रूप धारण किया और जब यह कुम्भ गरुड़ को अर्पित किया गया तो अग्रणी देवता उसे ले करके चले और उसे इन्द्र को अर्पित कर दिया। इन्द्र जब उस कुम्भाकार को लेकर चले तो और दैत्यों को जब यह प्रतीत हुआ कि वह तो कुम्भाकार अमृत यहाँ से चला गया तो दैत्यों ने उनके पीछे आक्रमण किया। जहाँ देवता कुम्भ को अर्पित करते चले गये वहाँ दैत्य पहुँचे और अमृत कुम्भ को शान्त करना चाहा परन्तु वह शान्त न हो सका और देवताओं के समीप इन्द्र लोक में चला गया और दैत्य कोई आक्रमण न कर सके।

मेरे प्यारे भद्र पुरुषों! आज हमें विचार विनिमय यह करना है कि जब समुद्र मन्थन किया जाता है तो वह अमृत क्या है जिसको देवता पान किया करते हैं। आचार्यों ने ऐसा वर्णन किया है कि

वह जो वेद की परम्परा है, वेदरूपी जो अमृत है उस सबको देवताओं ने अपना लिया। वेद से विपरीत चलने वाले दैत्य थे उन्होंने देवताओं पर आक्रमण किया। विचारों से नष्ट करना चाहा परन्तु यह जो ईश्वरीय ज्ञान है वह किसी काल में भी नष्ट नहीं होता।

कुम्भ पर्व

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे एक समय ऐसा वर्णन कराया कि देवताओं ने उस कुम्भ को चार स्थानों में नियुक्त किया तो कहा जाता है कि यहाँ पृथ्वी पर चारों ही स्थानों पर कुम्भ का पर्व मनाया जाने लगा। मुझे तो इसका विशेष ज्ञान नहीं है परन्तु इनके मुखारबिन्दों से एक समय मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ। आज भी मुझे इनका शब्द स्मरण आता चला जा रहा है कि यह जो चारों स्थान इस महान् ऋषियों की भूमि पर माने जाते हैं तो जहाँ-जहाँ कुम्भ को स्थित किया वहीं-वहीं देखो वह पर्वों का एक **महाचक्राणी** रूपों में इसे प्रदीप्त किया जाता है। यह क्यों किया जाता है? यह क्या है? इसकी लोकोक्तियाँ ऐसी महान् ऋषियों ने क्यों नियुक्त कीं? तो ऋषि मुनियों ने कहा है कि ऐसे-ऐसे अवसरों पर जो तपस्वी महान् पुरुष होते हैं वह आते हैं और वह जो अपना महान् अमृत को पान किया हुआ वेद ज्ञान है उसका प्रसारण करके चले जाते हैं। उन सुन्दर नदियों के जल में स्नान करते हुए प्राणी उन महान् पुरुषों की वार्ताओं को स्मरण करके हृदयों में ऊँचे संस्कारों की उपलब्धि हो जाती है और वह इस सँसार-सागर से आगे चलने के लिए तत्पर होते हैं। त्याग और तपस्या की जो मानवता है वह हृदय में प्रदीप्त होती चली जाती है।

मेरे प्यारे भद्र पुरुषों! हमारे यहाँ कुछ ऐसा कहा जाता है कि देवताओं ने यह चार स्थान नियुक्त किए। **देवता कौन होते हैं?** देवता वह होते हैं जो अच्छाइयों को धारण करते हुए उन अच्छाइयों को मानने के लिए प्रसारण करके चले जाते हैं। आज वह किन रूपों में हैं मुझे तो यह ज्ञान नहीं है परन्तु द्वापरकाल में जब महाराजा

वेदव्यास, कणाद, गौतम, कपिल इत्यादियों का यहाँ प्रवाह हो रहा था, उनकी ध्वनियाँ हो रही थीं उस काल से इसको निधार्रित किया गया था। **हमारे यहाँ ऋषि मुनियों को देवता ही कहा जाता है!**

समुद्र मन्थन

आज जहाँ मैं यह वर्णन करूँ कि सृष्टि के प्रारम्भ में दैत्य और देवताओं ने समुद्र का मन्थन किया तो मेरा हृदय गद्‌गद् होने लगता है क्योंकि दैत्य और देवता कौन हैं जो इस सँसाररूपी समुद्र को मन्थन किया करते हैं? बेटा! योगिक प्रक्रियाओं में चले जाओ। जब योगी साधक बनता है वह सँसार रूपी समुद्र को अपने हृदय में मन्थन करता है। हृदयरूपी समुद्र का जब मन्थन करता है तो इसमें दैत्य और देवताओं की जो प्रवृत्तियाँ हैं, संस्कार हैं उन दोनों का जब मन्थन होता है तो कहीं देवता ऊँचे बन जाते हैं तो कहीं दैत्यों का बहुमत हो जाता है। जब इस प्रकार की प्रक्रियायें योगी के हृदय में चलती हैं तो योगी उस अमृत को लेने का प्रयास करता है। वह अमृत क्या है? वह जो महान् त्याग और तपस्या है, वह जो विवेक है, ज्ञानरूपी जो अमृत है उसे जब योगी पान कर लेता है तो उसका हृदय अमृतमय हो जाता है और वह इन्द्रपुरी को चला जाता है।

तपस्वी बनने की प्रेरणा

मैंने कल के वाक्यों में त्याग और तपस्या के सम्बन्ध में नहीं केवल तप के सम्बन्ध में कुछ अपने विचार प्रकट किये। यह कहा गया था कि मानव को तपस्वी बनना चाहिए। बिना तप के मानव अमृत को प्राप्त नहीं कर सकता। जब मानव अपने को ऊँचा बनाता है तो वह प्रत्येक स्थान में कुम्भ को दृष्टिपात करता है। वह कुम्भ क्या है? जैसे कुम्भाकार होता है उसी प्रकार यह जो सर्वस्व ब्रह्माण्ड है जिसमें लोक-लोकान्तर समाहित हो रहे हैं यह एक कुम्भाकार जैसा होता है। इसी प्रकार जब माता के गर्भस्थल में बालक होता

है तो कुम्भाकार की भाँति होता है। कमल जैसी पंखड़ियाँ होती हैं। जरायुज में एक बिन्दु जाता है उससे बालक की रचना होती है। इसी प्रकार जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है तो परमात्मा की ईक्षण शक्ति द्वारा होता है। यह जो प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु हैं वह सब एक स्थान में सुगठित हो जाते हैं और जब परमात्मा की प्राणमयी शक्ति महत् तत्त्व चलता है तो उस समय मन और प्राण द्वारा उसके विभाजन होते हैं और नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों में विभाजित हो जाते हैं। कुम्भाकार की बहुत-सी व्याख्यायें हैं। मानव का जो मस्तिष्क है यह भी कुम्भाकार के तुल्य माना गया है क्योंकि इसमें ब्रह्मरन्ध्र है, इसमें त्रिकुटी है। जब इन दोनों का समन्वय हो जाता है तो उस समय हृदय में महानता में लेता चला जाता है और वास्तव में मानव सँसार-सागर से पार हो जाता है।

बेटा! मैं कुछ पर्वों के सम्बन्ध में भी प्रकट कर रहा था और वह यह है कि राजा, महाराजा, ऋषि, मुनि, और तपस्वी आ करके अपने निगले हुए अमृत को प्रजा को प्रसारण करके चले जाते हैं। हमें उनके वाक्यों को श्रवण करते हुए अपने जीवन को अमृतमय बना लेना चाहिए और तपस्वी बन जाना चाहिए। आज हमें अपने मानवत्व को वहाँ ले जाना चाहिए यह एक महान् प्रश्न मानव के समीप रह जाता है। यहाँ दैत्य और देवता दोनों का संघर्ष होता है परन्तु दोनों का गुरु एक ही माना जाता है। वही प्रजापति विरोचन का गुरु तो वही प्रजापति इन्द्र का गुरु होता है। जो सँसार में तप जाता है तपस्या में परणित हो जाता है वही महानता को प्राप्त हो जाता है।

प्रजापति का आत्म ज्ञान के लिए घोष

मुनिवरो! मुझे आज एक वार्ता स्मरण आती चली जा रही है, एक समय प्रजापति ने एक घोष कराया कि मैं आत्मा का ज्ञान करा देता हूँ वह घोष दैत्य और देवता दोनों ने ही श्रवण किया। दैत्यों ने अपने स्वामी विरोचन से कहा कि आज प्रजापति के यहाँ

से यह घोष हुआ है कि मैं आत्मा का ज्ञान करा देता हूँ। अब आत्मा के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए हमें अग्रणीय बनाइये। विरोचन ने कहा बहुत सुन्दर। उधर देवताओं ने इन्द्र से कहा कि आप आत्मा का ज्ञान प्रजापति से प्राप्त कर हमें प्राप्त कराइये। उस समय इन्द्र ने कहा कि बहुत सुन्दर।

इन्द्र और विरोचन का प्रजापति के यहाँ आगमन

मुनिवरो! एक स्थान से इन्द्र और एक स्थान से विरोचन दोनों ने प्रजापति के आसन को प्रस्थान किया। भ्रमण करते हुए एक भयँकर वन में से तीन-तीन समिधायें ले करके यह प्रजापति के आश्रम में जा पहुँचे। प्रजापति ने दोनों का बड़ा आदर किया। दोनों ने उनके चरणों को स्पर्श करके कहा कि भगवन्! लीजिए यह तीन समिधायें। उनके चरणों में तीन समिधायें अर्पित करके विराजमान हो गए। विरोचन ने कहा "हे भगवन्! आपने घोष कराया है कि मैं आत्मा का ज्ञान कराता हूँ आप हमें आत्मा का ज्ञान कराइये।" उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर, परन्तु विरोचन जी हमारे यहाँ एक नियम है कि मेरे यहाँ बत्तीस (32) वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करो, तपस्वी बनो। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर।

आत्म ज्ञान के लिए तप

बेटा! विरोचन और इन्द्र दोनों ने बड़े आनन्दपूर्वक आसन में विराजमान हो करके तपस्वी बनने का सँकल्प किया कि वास्तव में हम तपस्वी बनेंगे। तो उन्होंने 32-32 वर्ष तक का सँकल्प किया और ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए वह तत्पर हो गए। ब्रह्मचर्य के आश्रम में विराजमान हो करके प्रभु का चिन्तन निदिध्यासन इत्यादि करते रहे। जब वह 32 वर्ष समाप्त हो गये तो प्रजापति के द्वार पर आ पहुँचे और प्रजापति से कहा कि "हे भगवन्! अब हमें आत्मा का ज्ञान कराइए। उन्होनें कहा कि" आत्मा का ज्ञान चाहते हो तो यह जो **शरीर** है इसी को आत्मा कहते हैं, इसी का तुम पालन

करो, इसी के ऊपर निध्यासन, इसी का पान करना आत्मा को जानना है। अब विरोचन बड़ा मग्न हो गया। इन्द्र भी मग्न हो गए। दोनों ने आचार्य की वार्ता को स्वीकार करके प्रजापति के यहाँ से प्रस्थान किया। विरोचन तो दैत्यों की सभा में जा पहुँचे और दैत्यों को कहा कि प्रजापति ने कहा है कि यह जो मानव का शरीर है इसी को हमारे यहाँ आत्मा कहते हैं, इसी को तुम आत्मा स्वीकार करो। दैत्यों ने यह वाक्य स्वीकार कर लिया और मग्न हो गये कि आत्मा का ज्ञान यही है कि शरीर का पालन करो। परन्तु इन्द्र ने मार्ग में भयँकर वन में यह विचारा कि प्रजापति ने ऐसा कहा कि इसी को आत्मा कहते हैं यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि देवता जब यह प्रश्न करेंगे कि यह जो शरीर है यह तो अपंग होने के पश्चात् भी जीवित रहता है। एक नेत्र चला जाता है मानव जीवित रहता है, दोनों चले जाते हैं तो उसके पश्चात् भी जीवित रहता है। हस्त चले जाते हैं तो उसके पश्चात् भी जीवित रहता है, यह शरीर आत्मा किस प्रकार हो सकता है, क्योंकि आत्मा का विभाजन नहीं होता, आत्मा एक-रस रहता है। आत्मा यदि शरीर होगा तो आत्मा के विभाग भी हमें स्वीकार करने होंगे। इसीलिए मुझे प्रतीत होता है कि यह जो शरीर है यह आत्मा नहीं हो सकता और मैं प्रजापति के द्वार चलूँ।

मुनिवरो! उन्होंने प्रजापति के यहाँ प्रस्थान किया और तीन समिधा अर्पण करके प्रजापति से कहा कि भगवन्! आपने इस शरीर को आत्मा कहा है परन्तु यह विश्वास नहीं होता क्योंकि मेरे विचार में यह शरीर आत्मा प्रतीत नहीं होता मुझे निर्णय कराइये कि आत्मा क्या है? उस समय प्रजापति ने कहा हे इन्द्र! तुम यथार्थ उच्चारण कर रहे हो परन्तु यदि आज तुम आत्मा को जानना चाहते हो तो तुम मेरे यहाँ 32 वर्ष तक पुनः ब्रह्मचर्य का पालन करो। इन्द्र ने वहीं 32 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया, तपस्वी बने इन्द्रियों पर संयम करते हुए तपस्या के पश्चात् जब 32 वर्ष समाप्त हो

गये तो प्रजापति के समक्ष नतमस्तक होकर कहा कि भगवन्! आपके कथनानुसार 32 वर्ष हो गये हैं अब मुझे आत्मा का ज्ञान कराइये। उन्होंने कहा कि हे इन्द्र! आज तुम आत्मा को जानना चाहते हो तो यह जो **स्वप्न अवस्था** या स्वप्न का जो क्षेत्र है इसको ही आत्मा कहते हैं। इसी को तुम जानने का प्रयास करो। इन्द्र ने प्रजापति के आसन से प्रस्थान किया और भयँकर वन में पहुँचे। विचार विनिमय करने लगे कि हम इस स्वप्न अवस्था को आत्मा कैसे स्वीकार करें। जब भयँकर वन में यह मनन करने लगे तो उन्होंने यह निर्णय किया कि यदि वास्तव में यह स्वीकार कर लेते हैं कि स्वप्न का जो क्षेत्र है यही आत्मा है तो इसमें मानव में कितनी घृणा होती है, कितना ब्राह्मण होता है, इस पर विचार विनिमय किया जाना चाहिए। उन्होंने मनन किया कि जब मानव स्वप्न के क्षेत्र से जाता है वहाँ रोग होता है, शोक भी प्रतीत देता है, वहाँ कहीं व्याकुल होते हैं, कहीं द्रव्यपति बन जाते हैं, कहीं द्रव्यपति से निर्धन बन जाते हैं। जिसमें इतना कष्ट हो, जिसमें संकल्प विकल्प का इतना क्षेत्र हो वह आत्मा नहीं हो सकता। बेटा! जब यह विचार इन्द्र के द्वारा आये तो वह तीन समिधा लेकर के फिर प्रजापति के आसन को प्रस्थान किया। प्रजापति के द्वारा नतमस्तक होकर के बोले कि प्रभु! मुझे तो यह प्रतीत हो रहा है कि यह जो स्वप्न अवस्था है यह आत्मा नहीं हो सकता। मुझे आत्मा का ज्ञान कराइये। आत्मा क्या है? मैं आत्मा को जानना चाहता हूँ? जिस समय इन्द्र ने कहा तो प्रजापति ने कहा कि तुम यथार्थ उच्चारण कर रहे हो परन्तु तुम मेरे यहाँ 32 वर्ष तक का ब्रह्मचर्य का और पालन करो।

बेटा! जब प्रजापति ने ऐसा कहा तो इन्द्र ने स्वीकार कर लिया और 32 वर्ष तक पुनः ब्रह्मचर्य रहने का संकल्प किया। जब वह 32 वर्ष समाप्त हो गये तो उन्होंने जाकर प्रजापति से कहा कि प्रभु! अब मुझे आत्मा का ज्ञान कराइये। उन्होंने कहा कि बहुत

सुन्दर। यह जो **सुषुप्ति अवस्था** है इसे आत्मा कहते हैं। तुम इसके ऊपर निदिध्यासन करो, विचार करो। तो इन्द्र ने वहाँ से प्रस्थान किया। उसी भयँकर वन में पहुँचे और निर्णय करने लगे कि यह जो सुषुप्ति अबस्था है यह कैसे आत्मा हो सकता है। क्योंकि मुझे यह प्रतीत नहीं हो पा रहा है कि यह जो सुषुप्ति अवस्था है यह क्या है? देखो पांच ज्ञानेन्द्रियाँ पांच कर्मेन्द्रियों का जो क्षेत्र है वह मन में लय हो जाता है, मन बुद्धि में लय जो जाता है और बुद्धि चित्त के क्षेत्र में चली जाती है उसका नाम सुषुप्ति अवस्था कहा जाता है। इसलिए आज मुझे यह निर्णय कैसे हो कि यह आत्मा है। यह तो मन का क्षेत्र है, इन्द्रियों का क्षेत्र है, बुद्धि का क्षेत्र है और वह चित्त के क्षेत्र में रमण कर जाते हैं। चित्त उसे कहते हैं जहाँ मानव के जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार निहित होते हैं। अब जब यह मन इन्द्रियों का विषय शान्त होने के कारण चित्त में लय हो जाता है उसी को सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। वह तो केवल उस महान कारण में लय हो करके, महान चित्त में लय हो करके जीवन को पान करता है। अरे! जहाँ जीवन को पान किया जाता हो एक तो जीवन देने वाला और एक जीवन को पान करने वाला। क्योंकि जीवन शरीर को प्राप्त होता है, शरीर को शक्ति प्राप्त होती है, वह शक्ति चित्त के द्वारा आती है। अब जो चित्त के द्वारा शक्ति देता है वह एक और वस्तु है। यह जो सुषुप्ति अवस्था है इसको हम आत्मा कदापि भी उच्चारण नहीं कर सकते।

जब उन्होंने ऐसा निर्णय किया तो वह पुनः तीन सुमिधा ले करके प्रजापति के आसन पर जा पहुँचे और प्रजापति से कहा कि प्रभु! यह जो सुषुप्ति अवस्था है इसको हम आत्मा नहीं कह सकते, न यह आत्मा हो सकता है आपने यह मुझे क्या निर्णय कराया है? उन्होंने कहा कि हे इन्द्र! तुम यथार्थ उच्चारण कर रहे हो परन्तु तुम मेरे यहाँ पांच वर्ष तक पुनः तपस्वी बनो। तो बेटा! वह पांच वर्ष तक तपस्या करने के लिए तत्पर हो गए। तपस्या करने लगे।

पांच वर्ष के पश्चात् वह नतमस्तक होकर के बोले प्रभु! मुझे आत्मा का ज्ञान कराइये। उस समय प्रजापति ने कहा, इन्द्र! आत्मा वह पदार्थ है जो किसी भी काल में नष्ट नहीं होता। यह सदैव एक-रस रहता है, वह तपस्या में संलग्न रहता है। आत्मा वह पदार्थ है जिसमें न मानव को रोग होता है न शोक होता है न आलोचना करता है, एक रस में विराजमान हो जाता है। आज हम अपने को ऊँचा बनाना चाहते हैं, आत्मा को जानना चाहते हैं आत्मा को जानने के लिए हमें विचारना होगा कि यह सँसार क्या है, सँसार में अमृत क्या है और तप क्या है। इसको जाने बिना हम आत्मा को नहीं जान सकेंगे परन्तु मेरे विचार में तो इन्द्र! **आत्मा वही है जो इस शरीर को क्रियाशील बनाता है शरीर में जो गति देता है, ज्ञान और प्रयत्न दोनों उसी के द्वार से उत्पन्न होते हैं, उसी को हमारे यहाँ आत्मा कहा जाता है।**

मुनिवरो! जब आत्मा का उन्होंने निर्णय कराया तो इन्द्र को शान्ति हो गई और यह निर्णय हो गया कि वास्तव में आत्मा और शरीर दोनों भिन्न-भिन्न हैं। शरीर तो कणों से उत्पन्न होता है और वह प्रकृति के कण हैं जो क्रिया उत्पन्न होती है वह ज्ञान और प्रयत्न आत्मा के माध्यम से उत्पन्न होती है। जब यह निर्णय उनके हृदय में आ पहुँचा तो आगे चल करके उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि हे भगवन्! मैंने 101 वर्ष की तपस्या की है।

जीवन में तपस्या आवश्यक

बेटा! वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है? मानव को तपस्वी बनाने की आवश्यकता है। इन्द्र जब तपस्वी बना उसके पश्चात् आत्मा का ज्ञान प्राप्त हुआ। बिना तपस्या के मानव न होने के तुल्य माना जाता है। जैसे मानव बीजहीन भूमि में बीज को स्थापित कर देते हैं वह मानव की गति हो जाती है। आज हमें उस गति को नहीं लाना है। केवल यह विचार विनिमय करना है, चिन्तन करना है, मनन करना है, कि हम आत्मा को जानने का

प्रयास करें। आत्मा के उस क्षेत्र में पहुँचे जहाँ आत्मा को जानने के पश्चात् मानव सब कुछ जान जाता है और सँसार में ऊँचा बन जाता है। महर्षि कपिल के शब्दों में यह उच्चारण करना बहुत अनिवार्य होता है कि वेद का जो अमृत है वह आत्मा के ज्ञान के साथ पान किया जाता है। आज कोई मानव आत्म-ज्ञान पाने के पश्चात् यदि यह कहता है कि मैं सम्पन्न विद्याओं का ज्ञाता बन गया हूँ तो यह उसके लिए असम्भव है। वह मिथ्या उच्चारण करने वाला प्राणी कहलाता है क्योंकि सँसार में जो परमात्मा का क्षेत्र है जैसे परमात्मा अनन्त है ऐसे ही परमात्मा की विद्या भी अनन्त है, उसकी रचना भी उतनी ही अनन्त मानी गई है। आज मानव बिना तपस्या के केवल अक्षरों का बोधी हो करके यह उच्चारण करने लगे कि मैं सम्पन्न विद्याओं को जानता हूँ, सम्पन्न यौगिक क्रियाओं को जानता हूँ तो उसका यह कथन मिथ्या हो जाता है एक काल में। इसलिए प्रत्येक मानव को विचार विनिमय करना है कि आत्मा को जानने के लिए सदैव तत्पर रहना है, आत्मा के क्षेत्र में हमें पहुँचने के लिए तपस्या के क्षेत्र में जाना है।

यह है आज का हमारा वाक्य। मैं कोई आज अधिक चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूँ। केवल यह वाक्य प्रकट कर रहा था प्रारम्भ के शब्दों में कि हमारे यहाँ कुम्भाकार का जो अमृत है उसे पान करना हमारे लिए बहुत अनिवार्य होता है उसे जब आचमन के रूप में हम पान करते हैं तो हमारा हृदय पवित्र होता चला जाता है। हमारे हृदय में महानता आ जाती है, मानवता के विशेष अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं वह मानव सँसार में, राष्ट्र में भी मानवता को ऊँचा बनाने में अग्रणीय बन जाता है। मुझे बेटा! नाना वार्तायें स्मरण आने लगती हैं जब तपस्वियों की चर्चायें स्मरण आती है तो हृदय गद्गद् होने लगता है।

मुनिवरो! महर्षि याज्ञवल्क्य तपस्या करने में अग्रण्य रहे। **देवता वह होता है जो तपस्वी होता है।** वह देवता नहीं होता जिसके

द्वारा पक्षपात के अंकुर होते हैं, जिसके द्वारा निन्दा स्तुति के अंकुर होते हैं, जो अपने स्वार्थ के वशीभूत हो करके महान् प्राणी को भी कलंकित कर सकता है, वह देवता नहीं होता। उस मानव के हृदय में दैत्य प्रकृति के विचार आ जाते हैं। इसलिए आज हमारे वाक्यों का अभिप्राय क्या है? आज हमें विचार विनिमय करना है। आज परमात्मा की सृष्टि में आकर के हमारे लिए अनुसन्धान करना बहुत अनिवार्य है। यदि मानव के जीवन में अनुसन्धान नहीं होगा तो उसका जीवन न होने के तुल्य ही माना जाता है। आज हम अनुसन्धानवेत्ता बनने के लिए तत्पर बनें। कुम्भाकार को भी हम अनुसन्धान की दृष्टि से दृष्टिपात करते चले जायें। वह कुम्भ क्या है जो प्राणी मात्र के लिए अमृत का कार्य करता है। आज मेरे प्यारे महानन्द जी इस वाक्य को विस्तार से प्रकट करते परन्तु समय इतनी आज्ञा नहीं दे रहा है। केवल मैं एक वाक्य प्रकट करने जा रहा हूँ, इन्होंनें मुझे संकेत दिया, मैंनें उसके अनुसार कुछ अपने विचार प्रकट किये हैं। परन्तु मेरे पूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि न देने से कुछ विचार सँसार को देना बहुत ही सुन्दर कहलाया जाता है। तो मेरे प्यारे भद्र पुरुषों! आज हम प्रभु की याचना करते हुए, आत्मा में संलग्न होते हुए आत्मा को जानने का प्रयास करें यही सँसार में हमारा सबसे बड़ा कर्म होता है। आत्मबल को उत्पन्न करें, आत्मा का बल यदि मानव के समीप होगा तो दुराचारी प्राणी भी नतमस्तक हो जाता है, राष्ट्र भी नतमस्तक हो जाता है। राष्ट्र और मानव उस काल में नतमस्तक नहीं होता जब तक उसके द्वारा तपस्या का, आत्मा का बल नहीं होता क्योंकि तपस्या से ही यह सँसार ऊँचा बन जाता हैं

मुनिवरो देखो? भगवान् राम और रावण में क्या विशेषता थी। राम के द्वारा तपस्या थी, और रावण के द्वारा तपस्या नहीं थी। इतने बड़े साम्राज्य को उन्होंने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इसी प्रकार भगवान् कृष्ण में और दुर्योधन में क्या विशेषता थी। मुझे स्मरण

है बेटा! जब महाभारत का संग्राम होने लगा, संग्राम के लिए दोनों पक्ष भगवान् कृष्ण से सहायता लेने के लिए चले। एक स्थान से महाराजा अर्जुन चले और एक स्थान से महाराज दुर्योधन अभिमान से संलग्न था और महाराजा कृष्ण के सिर के आंगन में विराजमान हो गए और अर्जुन पश्चात् पहुँचा और वह उनके चरणों में नतमस्तक हो गया। भगवान् कृष्ण निद्रा में तल्लीन थे। निद्रा से जब जागरूक हुए तो प्रथम अर्जुन को दृष्टिपात किया और पूछा कहो अर्जुन किस प्रकार आए हो आज क्या कार्य हो गया? दुर्योधन ने कहा कि भगवन् मैं भी आया हूँ आपके द्वारा। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर। बोलो क्या चाहते हो? उन्होंने कहा कि भगवन्! हम संग्राम के लिए सहायता चाहते हैं हमें सहायता दो। उन्होंने कहा कि भाई तुम्हें सहायता प्राप्त होगी परन्तु प्रथम जो मांग है वह अर्जुन की होगी, उन्होंने कहा प्रथम आया तो मैं हूँ। भगवान् कृष्ण ने कहा कि यह तो मैं नहीं जानता परन्तु सबसे प्रथम मुझे अर्जुन के दर्शन हुए हैं। देखो एक स्थान में तो केवल मैं हूँ और एक स्थान में मेरी सर्वस्व सैना है अब जो चाहते हो ले जाओ। महाराजा अर्जुन ने यह विचारा कि मैं सेना का क्या करूँगा जब मेरे द्वारा जनार्दन आ जायें। तो उन्होंने कहा कि भगवन्! मैं तो आपको चाहता हूँ। दुर्योधन बड़ा मग्न हो गया कि सर्वस्व सेना मुझे युद्ध करने के लिए प्राप्त हो गई आज इनका मैं क्या करूँगा। क्योंकि इन्होंने तो शस्त्र भी नहीं उठाना। तो बेटा! जो प्राणी इतना त्यागी और तपस्वी होता है वह महाभारत जैसे संग्राम को बिना अस्त्र-शस्त्रों के करा सकता है। मुझे उनका वह तप भी स्मरण आता रहता है जब वह यह विचार कर चले कि पांडवों को कुछ न कुछ उनकी जीविका के लिए दिलवा दूँ तो उस समय हस्तिनापुर के क्षेत्र में दुर्योधन ने कहा था कि हे ग्वाले! कैसे आए। उन्होंने कहा कि मैं इसलिए आया हूँ कि तुम पांडवों को कुछ तो अर्पित कर दो। उन्होंने कहा कि मैं कुछ अर्पित नहीं करूँगा। पृथ्वी का एक अंकुर भी उन्हें प्राप्त नहीं कराया जा सकेगा। मुनिवरो! उन्होंने बहुत कुछ वाक्य प्रकट किया परन्तु

वह एक रस रहे। तपस्या का बल कितना महान होता है। राष्ट्र के ऊँचे-ऊँचे भोजनालयों को त्याग करके महात्मा बिदुर के यहाँ जाकर के सुन्दर से पदार्थों को पान कर लिया। यह है तपस्या, जब मानव तपस्वी बनता है तो तपस्या का बल होता है। वह एक महान से महान सम्राट को नीचे गिरा देता है और तपस्वी का जीवन सँसार में महानता को प्राप्त हो जाता है।

बेटा! यह है आज का हमारा वाक्य। हे मानव! सँसार में तू अपने जीवन को महान बनाने के लिए आत्मा को जानने का प्रयास कर। आत्मा के बल से राष्ट्र, समाज सभी कुछ तेरे द्वारा नतमस्तिष्क होता चला जायेगा। आज के वाक्यों का अभिप्राय है कि हम प्रभु का चिन्तन करते हुए मानवता के उस क्षेत्र में चले जायें जहाँ मानव का वास्तव में कल्याण होता है, मानव अपने ऊँचे पद को प्राप्त कर सकता है। इस सँसार-सागर से पार होते चले जायें। यह है आज का हमारा वाक्य। अब वेदों का पाठ होगा इसके पश्चात् यह वार्ता समाप्त। बेटा! देखो जो विरोचन प्रकृति के होते हैं दैत्य प्रकृति के वह शरीर के पालन-पोषण में ही लगे रहते हैं, इसी को आत्मा स्वीकार करते हैं और जो देवता होते हैं वह इस शरीर को आत्मा स्वीकार नहीं करते वह केवल आत्मा को जानते हुए देवता पद को प्राप्त होते चले जाते हैं। **देवता कौन हैं? जो आत्मा को जानते हैं।** दैत्य कौन हैं? जो अपने शरीर के ही पालन-पोषण में लगे रहते हैं और जिन्हें ज्ञान और विवेक नहीं होता। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट की जा सकेंगी।

पूज्य महर्षि महानन्द जी — धन्य हो भगवन्!

पूज्यपाद गुरुदेव — मुनिवरो! आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा।

वेद पाठ.....।

दिनांक : 10 मई, 1968
स्थान : दत्ता अखाडा क्षेत्र
उज्जैन (म.प्र.)

।। ओ३म् ।।

आर्यों का भूषण

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! अभी-अभी हमारा पर्ययण समय समाप्त हुआ। आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदों का पाठ कर रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, जिन वेद मन्त्रों का हमनें अभी-अभी पाठ किया। आज से पूर्व मैंने संहिताओं के कुछ मुख्य विवरण भी दिये। आज मुझे उन सँहिताओं पर नहीं जाना है जिन सँहिताओं को हमारे ऋषि-मुनियों ने महत्वपूर्ण कहा है। आज तो हम उनकी महानता का गुणगान ही गा सकते हैं।

उच्य जीवन का मार्ग

एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था कि न करने से कुछ करना भी सुन्दर कहा गया है। वह बड़ा महान् है, हमारे लिये बड़ा उपयोगी है जिससे मानव का जीवन उज्ज्वल बनता है। मनुष्य कुछ-कुछ करता रहता है तो एक समय वह भी आता है कि पूर्णताई को प्राप्त कर ही लेता है और जो मनुष्य यह जान बैठा है कि जब परमात्मा के गुणगान गाने में वाणी असमर्थ है, वाणी से वह जाना ही नहीं जाता तो प्रयत्न किसके लिये करें। परन्तु इसका यही भाव नहीं। इसका उत्तर तो यह है कि मानव जो कुछ भी करता है वह अपने लिये करता है और अपना मानवत्त्व ऊँचा बनाने के लिये परिश्रम करता है। वाणी से गुणगान गाता है अपनी महानता के लिये। **वह कर्म अवश्य करना चाहिए जिससे मनुष्य का जीवन ऊँचा बन जाये।**

मुनिवरो! आज हमारे जीवन को देख रहे होंगे। न प्रति लाखों वर्षों का पाप रहा है यह सब कुछ क्या है? यह सब मानव के

कर्मों का भोग है। आज जितनी आपत्तियाँ हैं, जितने संकट हैं यह सब मनुष्य के संस्कारों के अनुकूल आते हैं। मुझे प्यारे महानन्द जी ने आज से पूर्व काल में कहा था कि वर्तमान समय में वृष्टि का बहुत प्रकोप हो रहा है। आज प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या, राजा और प्रजा सभी चिन्तित हैं। सँसार चिन्तित है परन्तु यह नहीं विचारा जाता कि क्यों चिन्तित हैं। मुनिवरो! यह अपने कर्त्तव्य को त्याग करके चिन्तित बन गया है। यदि यह आज अपने कर्त्तव्य के आधार पर चलता तो इस प्रकार की अधोगति को प्राप्त न होता। यह वृष्टि क्यों होती है? इन्द्र का इस प्रकार का प्रकोप प्रजा पर क्यों हो जाता है? प्रजा इस प्रकार दुखित क्यों है? राजा चिन्तित क्यों है? इसका सब कुछ कारण यह कि हम सब अपने कर्तव्य को त्यागते चले जा रहे हैं। हम अपने कर्त्तव्य पर दृष्टि नहीं पहुँचाते परन्तु अपने उदर की पूर्ति में और अपने ऐश्वर्य में मानव अपने जीवन को शान्त करता चला जा रहा है। जब यह दशा है तो सँसार कैसे ऊँचा बनेगा।

मनुष्य को दूसरों के अपमान में बहुत रुचि चलती है और जहाँ गुणों के ग्रहण का प्रश्न आता है वहाँ मनुष्य शान्त हो जाता है, यह क्या है? यह सब अपने कर्त्तव्यों को त्यागने का ही परिणाम है। आज यदि मानव अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, तो ऊँचा बन जाता है।

सतोयुग

मुनिवरो! सतोयुग में क्या था? उसको सतोयुग क्यों कहा जाता है? त्रेता को त्रेता क्यों कहा जाता है? द्वापर को द्वापर क्यों कहा जाता है? इस कलोयुग की कलोयुग क्यों कहा जाता है? महानन्द जी तुमने सतोयुग के समय को देखा होगा। परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से हमें सतोयुग के मनुष्य को देखने का सौभाग्य मिला जहाँ ऋषि मुनियों की ऊँची प्रणाली थी। वहाँ कुछ उच्चारण करने का कुछ सौभाग्य भी मिला, परन्तु आज तो भी हमसे लाखों वर्षों

का किया हुआ पाप भोगा जा रहा है। आज तो उच्चारण करने का कोई वाक्य नहीं। महान सतोयुग क्या था? सतोयुग में कैसे आर्य थे, कैसी श्रेष्ठता थी, मेरी प्यारी माताएँ, मेरे प्यारे भद्र पुरुष कैसी अपनी वर्ण व्यवस्था को ऊँचा बनाने वाले थे! इस पर हमें पुनः से विचार करना चाहिए। हमारी संस्कृति क्या कह रही है जिस संस्कृति ने ऋषि मुनियों को ऊँचा बनाया। जिस संस्कृति से सतोयुग कहलाया। आज भी यदि उस संस्कृति को हम अपने जीवन में ले लेते हैं तो आज भी हमारा जीवन स्वर्गमय बन जाता है।

उस समय क्या संस्कृति थी? इस सम्बन्ध में देवर्षि नारद मुनि और भी सभी आयार्चों का एक मन्तव्य था, देखा भी गया है कि सतोयुग में जहाँ चार व्यक्ति एक स्थान में विराजमान होते, मेरी प्यारी माताएँ एकत्रित होतीं उसी काल में भगवान् की चर्चाएँ, देवता बनने की हृदय में आकांक्षायें। तो जब हर समय यह विचार रहते हों तो मनुष्य क्यों नहीं ऊँचा बनेगा। जहाँ विराजमान होते वहीं सत्यकाम की चर्चाएँ वार्त्तायें, अपने-अपने आत्मिक बल की चर्चाएँ, राष्ट्र को ऊँचा बनाने की चर्चाएँ किसी की निन्दा नहीं, परन्तु ऊँचे भाव अपने जीवन, अन्तःकरण में, अपने हृदय में और उन्हीं भावों से अपना जीवन ऊँचा बनाया जाता था। उस समय को सतोयुग कहा जाता था।

सतोयुग के राजा भी कैसे थे? राजा यह सोचा करते थे कि मेरी प्रजा किसी भी प्रकार से दुखित न हो। मेरी प्रजा यदि दुखित रह गई तो कर्त्तव्यों से विहीन हो जायेगी। जब यह प्रजा कर्त्तव्यों से विहीन हो जायेगी तो कोई न कोई पाप करेगी, अपने उदर पूर्ति के लिये कोई न कोई प्रयत्न ऐसा करेगी जिससे जहाँ तहाँ जाकर के पाप करेगी और अपने उदर की पूर्ति करने के लिये यह सबका कार्य न कर सकेगी। जहाँ उदर पूर्ति नहीं होती वहाँ क्या धर्म की चर्चायें नहीं होती? धर्म की चर्चायें उस काल में कर सकते हैं जब

अपनी आवश्यकतायें, जब अपने उदर की पूर्ति अन्न से औषधियों से परिपक्व हो, आत्मिक बल से परिपक्व हो। बेटा! जब धर्म की चर्चायें किया करते हो, भिन्न-भिन्न स्थानों में मनुष्य एकत्रित होकर राजा अपनी पत्नी के सहित विराजमान होकर भी धर्म की चर्चायें, ब्रह्मचर्य की चर्चायें, राष्ट्र को ऊँचा बनाने की चर्चायें, निःस्वार्थ की चर्चायें करते हों तो वहाँ एक समय क्यों न स्वर्ग बनेगा। उस काल को सतोयुग कहा जाता है जहाँ सत्यकाम की चर्चायें होती हों और जहाँ दैत्य न रहते हों, जहाँ देवताओं का वास रहता हो, देवताओं की जहाँ पूजा होती हो वह स्वर्ग है, वहाँ सतोयुग है।

देवताओं का पूजन

आज विचारना है कि हम देवताओं की पूजा कैसे करें? देवताओं की पूजा क्या है? आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने यह कहा था कि बहुत से पण्डित आधुनिक काल में गृह बनाकर देवताओं का पूजन करते हैं। नौ ग्रह एक स्थान में आ रहे हैं। आज नौ ग्रह नहीं अनन्त ग्रह हैं। प्रत्येक मानव यह कह रहा है, मेरे प्यारे महानन्द जी भी कहा करते हैं कि जो इतने बड़े ऊँचे ग्रह हैं वह हमारे जीवन में क्या आपत्ति ला सकते हैं? वह हमें क्या कर सकते हैं? यह कैसे कर सकते हैं? परन्तु हो सकते हैं। आज इसको सुनो। जो हम यहाँ पाप करते हैं उन पापों की हमारे मनों की भावनाएँ अन्तरिक्ष में रमण करती हैं देवताओं तक, सूर्य तक उनका प्रभाव पहुँचता है। जब हम यहाँ दुर्गन्धि ही करते रहते हैं वह दुर्गन्धि वाणी की करें, पदार्थों की करें और सुगन्धि का लेश भी न करें तो दुर्गन्धि सूर्य तक जाती है। अरे! जब सूर्य तक दुर्गन्धि जाती है तो सूर्य से तो दुर्गन्धि की वृष्टि होगी। वहाँ से सुगन्धि की वृष्टि कैसे हो सकती है हमारे लिये। अरे! वहाँ से तुम्हारे लिये दुर्गन्धि आयेगी और उस दुगन्धि को जब तुम पान करोगे तो तुम्हारा जीवन क्लिष्ट बन जायेगा।

हे मानव! आज तुझे विचारना है कि स्वर्ग किसको कहा करते हैं, हम देवताओं की पूजा कैसे कर सकते हैं, इसकी व्याख्या मैंने पूर्व कई स्थानों में की है, आज मुझे सौभाग्य मिला। इस सम्बन्ध में ऋषियों का उल्लेख है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने भी यही कहा है कि हमें देवताओं की पूजा करनी है, तो आज हमें दुर्गन्धि के स्थान में सुगन्धि की स्थापना करनी है। जब इन सुगन्धित पदार्थों के द्वारा सुगन्धि सूर्य तक जायेगी तो यह क्रूर क्यों होगा। वह तुम्हें सुगन्धि देगा। जब सूर्य तुम्हें सुगन्धि देगा तो तुम्हारा जीवन एक अनुपम बन जायेगा। तुम्हारे जीवन की धारायें विचित्र बन जायेगीं। देवताओं का हमें इस प्रकार पूजन करना है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि हम नौ ग्रह पूजन को एक महान् स्थलीय बना करके, साकार प्रतिबिम्ब बना करके उसकी इस प्रकार पूजा करें। नहीं, निःस्वार्थ होकर पूजा करो। **देवताओं की निःस्वार्थ पूजा कौन सी है?** निस्वार्थ पूजा वह है कि आज तुम्हारे द्वारा बुद्धिमान आ जाये, साधु आ जाये उसकी पूजा करो और उनसे कुछ लो। क्या लो? वह हमारे देवता हैं, वह हमें ज्ञान देते हैं, वह हमें ऊँची चर्चायें देते हैं, हमें ज्ञान की गंगा में स्नान करा देते हैं। आज हमें उन देवताओं की पूजा करनी है। हमें उन देवताओं की भी पूजा करनी है जिनको हम स्थली बनाते हैं, जिनको हम नौ ग्रह कहा करते हैं, परन्तु नाना ग्रहों का पूजन अपने अन्तःकरण को जानने के पश्चात् कर सकते हैं। आज सृष्टि में आकर अन्तःकरण को पवित्र बनाने के लिए सुगन्धि को उत्पन्न करना है। जब हम सुगन्धि को उत्पन्न करेंगे तो वही हमारी सुगन्धि सूर्यमण्डलों तक वायु में रमण होती हुई अग्नि में जाती हुई सूर्यमण्डल तक पहुँचती है तो हमारे लिये सुख की वृष्टि होती है। जब हम इस कर्त्तव्य को त्यागते हैं तो वह देवता हमें दुर्गन्धि ही देंगे और क्या दे सकते हैं। आज जब हम वायु में ही सुगन्धि नहीं उत्पन्न करेंगे, दुर्गन्धि देते ही रहेंगे तो वायु दुर्गन्धि हमें अवश्य देगी और हमारे जीवन को क्लिष्ट बना

देगी। यह ग्रह इस प्रकार हमारे ऊपर क्रूर हो जाते हैं, यह पदार्थ और महान् यह देवता क्रूर हो करके हमारे कर्मों का इस प्रकार फल दे देते है।।

आज हमें उस स्थली पर पहुँचना है जहाँ हमारे ऋषि मुनि पहुँच चुके हैं। आज देखो हम सतोयुग की व्याख्या कर रहे थे। उस युग में क्या होता था? मैंने कहा है कि धर्म की चर्चायें, राजा और मन्त्री विराजमान होते वहाँ भी धर्म की चर्चायें और दुरिता और दुराचार कोई भी नहीं होता था तो महान उसको स्वर्ग कहा जाता था। मुझे यह देखने का अच्छी प्रकार सौभाग्य मिला है कि वैश्यजन अपने गृह में द्रव्य को उसी प्रकार त्याग दिया करते थे, और कोई द्रव्य को छू भी नहीं सकता था। उनके अन्तःकरण इतने पवित्र थे तो हमें उस स्थली पर जाना है जिस स्थली पर हमारे ऋषि मुनि पहुँच चुके हैं, जिस स्थली को धारण करके अपने को ऊँचा बनाने के लिये उन महान आत्माओं ने देवताओं की पूजा करके अपने को ऊँचा बनाया है। हमें भी उन देवताओं की पूजा करके देवता बनना है।

देवता

देखो बुद्धिमान ब्राह्मण क्यों देवता कहा जाता है? क्योंकि उसने देवता की पूजा की है, माता का आदर किया है। जिसने माता का आदर किया है और जिसने देवताओं का आदर किया है वह क्यों न सँसार में देवता कहलायेगा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जी कहा करते थे कि मुझे ब्राह्मण क्यों कहते हैं क्योंकि मैंने ब्रह्मविद्या को जाना है, मैंने उस परम देव परमात्मा का अपने जीवन में आदर किया है। इसलिये देवताओं की गणना में लिया जाता हूँ। बुद्धिमान को देवता इसलिये कहा जाता है कि उसने माता का आदर किया है उसने देवताओं का आदर किया है। जो माता और देवताओं का आदर करता है वह अवश्य देवता बनता है।

माता

माता कौन है? माता जननी है जिसके गर्भ से हमनें जन्म लिया है। जननी माता के गर्भ से पृथ्वी माता पर आते हैं। वह माता भी हमें ऊँची स्थली पर पहुँचाने वाली है, वह माता हमारा पालन-पोषण करने वाली है। हम उस विज्ञान को जानें उस माता के आदर को जानें कि कैसे हमारा पालन करती है, कौन से पदार्थों से हमारा आदर करती है। बुद्धिमान इनको जानने लगता है। इसके पश्चात् आगे बढ़ता है। तृतीय माता संस्कृति है। जब बुद्धिमान संस्कृति का आदर करता है तो संस्कृति उस मनुष्य की उन देवताओं में गणना कर देती है जिन्होंने अपनी माता का आदर किया है जो हमारा पालन-पोषण करती है। जब हम संस्कृति का आदर करते हैं तो संस्कृति हमें अपने में धारण कर लेती है और जब अपने में धारण कर लेती है तो वह हमारे अन्तःकरण को पवित्र बना देती है, माता हमारे अन्तःकरण में विराजमान होकर के देवताओं की श्रेणी में विराजमान करा देती है।

शिखा

मैंने कल के वाक्यों में कहा था कि यदि तुम्हें देवता बनना है तो देवताओं की पूजा करो। आज हम सतोयुग का वर्णन कर रहे थे। सतोयुग में क्या था। सतोयुग में आर्य कितने पवित्र थे जिनकी एक महानता गाई गई है। उनको क्यों आर्य कहा जाता है? क्योंकि उन्होंने अपना जीवन ऊँचा बनाने में, पवित्र बनाने में शिक्षा का और यज्ञोपवीत का इतना आदर किया है। तीनों ऋणों का आदर किया। हमारे ऊपर तीन ऋण हैं हमें इनसे उऋण होना है, यही हमारे अन्तःकरण को पवित्र बना सकते हैं। इस शिखा का स्थान इस प्रकार इसलिए उच्च माना गया है क्योंकि यह पवित्र है और हमारे वैज्ञानिकों ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि शिखा के निचले भाग में ब्रह्मरन्ध्र है और ब्रह्मरन्ध्र को ऊँचा बनाने के लिये "ब्रह्म अस्ति सुभ्या कृतज्ञः

नरोती कश्मस्या।" वह ब्रह्मरन्ध्र ही है जिसको हम पवित्र बना सकते हैं। शिखा हमारे आर्यो का एक विशेष भूषण है। आज हमारा वह भूषण नहीं जो हमें नीचा गिरा दे। भूषण वह है जिस भूषण से हम देवता बन जायें, जिस भूषण से हम देवता कहलाते हैं। आज उस भूषण को हमें धारण करना है।

आज से पूर्व मेरे प्यारे महानन्द जी ने नाना प्रश्न किये परन्तु मैं गौरव के सहित कहा करता हूँ कि केवल आर्यों के द्वारा दो ऐसी विलक्षणता है शिखा और यज्ञोपवीत जिनसे यह महान् बन सकता है और यह आर्य कहलाता है। विज्ञानरूपों से तो यह कहा गया है कि शिखा के निचले विभाग में ब्रह्मरन्ध्र है, ब्रह्मरन्ध्र में अस्वस्ति हैं, उसको कोई शत्रु आकर छू भी न सके जिससे परमात्मा की यह अनुपम देन समाप्त न हो जाये। यही ऋषि-मुनियों का इसमें कथन है।

ब्रह्मफांस

यज्ञोपवीत में क्या विशेषज्ञता है? यज्ञोपवीत हमारे ऋणों का सूचक है। इसको ब्रह्मफांस भी कहा गया है। महानन्द जी! तुम्हें ज्ञात होगा जब महाराजा हनुमान जी लंका में पहुँचे थे अशोक वाटिका को नष्ट कर रहे थे तो उस समय रावण के पुत्र मेघनाथ का जब और कुछ बस न चला तो ब्रह्मफांस में उनको फांस लिया था। उस समय देखो हनुमान ने कहा था कि मैं ब्रह्मफांस को नष्ट नहीं करना चाहता क्योंकि मर्यादा नष्ट हो जाएगी। हमारे ऋषि-मुनियों ने कितना पवित्र माना है, हमारे आचार्यों ने कितना पवित्र माना है, हनुमान जैसे जो सेनापति कहलाये जाते थे उन्होंने भी इस ब्रह्मफांस का कितना आदर किया है। वैसे वैज्ञानिक रूप में भौतिक विज्ञान में एक ब्रह्मफांस रूपी शस्त्र भी होता है परन्तु यहाँ जो ब्रह्मफांस जिसमें हनुमान को फांसा वह केवल यज्ञोपवीत ही था। उन्होंने कहा था कि मैं इसको शान्त कर सकता हूँ परन्तु मुझे मर्यादा पुरुषोत्तम राम की आज्ञा नहीं है कि मैं ब्रह्मफांस को शान्त

करूँ। यह मर्यादा नहीं कहती, यह मेरा आर्य चिन्ह नहीं कहता। यदि मैंने आज इसे शान्त कर दिया तो मेरा आर्यत्व समाप्त हो जायेगा।

आर्य की विवेचना

आर्य किसको कहा जाता है? जिसके द्वारा ऋण हो और ऋणों से उऋण होने का प्रयत्न करता हो तो उसी को यहाँ आर्य कहा जाता है। आर्य उसको नहीं कहा जाता जो दूसरों की त्रुटियाँ देखने वाला हो, जो दूसरों की निन्दा करने वाला हो, दूसरों के अवगुणों को देखने वाला हो। आर्य उसको कहा जाता है जो शुद्ध और पवित्र होता है, जिसका जीवन वास्तव में सुन्दर होता है, जो अपनी मर्यादा की रक्षा करता है। भगवान् राम यथार्थ आर्य थे। जिनका आर्यत्व आज सँसार में प्रत्यक्ष है। जब तक पृथ्वी अन्तरिक्ष हैं, जब तक परमात्मा की सृष्टि है तब तक सँसार भगवान् राम के नाम की गाथायें गाता चला जायेगा क्योंकि वह यथार्थ आर्य थे। महाराजा हनुमान यथार्थ आर्य थे, भगवान् कृष्ण यथार्थ आर्य थे जो अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले थे। आज हमें आर्यत्व पर दृष्टि पहुँचानी चाहिए। उन ऋषि-मुनियों पर विचार करना चाहिए जिन्होंने हमें आर्यत्व का उपदेश दिया है। आर्यत्व का यह उपदेश हमें सृष्टि के प्रारम्भ में परमपिता ने वेदरूपी ज्ञान द्वारा दिया और कहा कि यथार्थ वह है जो वेदों के अनुकूल अपना जीवन बनाने वाला हो। यहाँ ऋषि-मुनियों से सृष्टि का निर्माण होता है, आर्यों से सृष्टि का निर्माण होता है। तो आज हमें विचारना चाहिए। आज हम धीमे-धीमे उस स्थिति पर पहुँच चुके हैं कि हम ही ने दैत्य बन करके इस सँसार को क्लिष्ट बना दिया।

मैं आज सतोयुग की वार्ता प्रकट कर रहा था। सतोयुग में सभी अपने धर्म की चर्चाएँ, अपने आत्मिक बल की चर्चाएँ, अपने आर्यत्व की चर्चाएँ सब ही कुछ करते। वह चर्चाएँ मनुष्य को इतना ऊँचा

उठा देती है कि वह काल सतोयुग कहलाता है। आज भी देख लो जिस गृह में पवित्र मनुष्य होते हैं, पति पत्नी से प्रीति होती है, आत्मिक बल होता है, परमात्मा का चिन्तन होता है, देवताओं की पूजा होती है वह गृह आज भी स्वर्ग है। आज हमें स्वर्गत्व पर विचार करना है, उस महानता पर पहुँचना है जिस महानता पर हमारे महान् पूर्वज ऋषि-मुनि पहुँच चुके हैं। उस संस्कृति पर पहुँचना है जो संस्कृति हमें देवता बना देती है। जिस संस्कृति में देवपन छिपा हुआ है, वह संस्कृति हमें वास्तव में ऊँचा बना देती है।

यज्ञोपवीत का रहस्य

आज मैं तीनों ऋणों के सम्बन्ध में, यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में उच्चारण कर रहा था। जो आज इन ऋणों से उऋण होने का प्रयत्न नहीं करता वह आर्य नहीं कहलाता। मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने जो सूचना दी आज इन धागों के कंठ में धारण करने से कोई लाभ नहीं। लाभ उसी काल में है जब तुम ऋणों से उऋण होने का प्रयत्न करोगे। एक-एक धागे के विज्ञान को जाना जायेगा उस समय तुम पात्र बनोगे। यज्ञोपवीत का पात्र कौन होता है? कहा जाता कि त्रेताकाल में जब महर्षि लोमश, महर्षि नारद, काकभुषण्ड जी, गरुड़ जी महाराज इत्यादि सब विराजमान हो गये उस समय काकभुषण्ड जी से यह प्रश्न किया कि इस यज्ञोपवीत में क्या विज्ञान है, क्यों इसे धारण किया जाता है? तो काकभुषण्ड जी ने यह कहा था कि आज हमारे द्वारा तीन ऋण है। एक ऋण ऐसा है जिससे उऋण होना हमारे लिए अनिवार्य है। इसका पात्र आज कौन है? लोमश और नारद मुनि ने जब यह प्रश्न किया तो काकभुषण्ड जी बोले कि सँसार में यज्ञोपवीत का पात्र होता है जो महान् देवताओं के ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करता है वह यज्ञोपवीत का पात्र कहलाता है। वही मेरी प्यारी माता पात्र होती है जो महान् देवताओं की पूजा करने वाली हो। यहाँ उन्होंने नाना देवियों का प्रमाण देते हुए कहा था।

ऋषि-ऋण

एक-एक धागे में कितना विज्ञान है, एक धागे में देव ऋण है जिसको ऋषि-ऋण कहते हैं। इस सम्बन्ध में काकभुषण्ड जी ने कहा है कि ऋषि-ऋण वह पदार्थ है कि ऋषियों ने जो हमें आदेश दिया, जो ऋषि हमारे लिए मर्यादा बांधकर चले गये हैं उस मर्यादा पर चलना, उस महान् मर्यादा का आदर करना और उस पर अपना जीवन बनाना यह हमारे ऊपर एक ऋण है। ऋषि-ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करें। काकभुषण्ड जी ने कहा कि हे लोमश! ऋषि-ऋण वह है कि तुम्हारे गुरुदेव ने जो तुम्हें ऋषित्व का उद्देश्य दिया है उसका पालन करके तुम ऋषि बने हो यह ऋषि-ऋण है। आज यदि तुम अपने गुरु के आदेशों को स्वीकार न करते और न उन पर चलते तो तुम आज सँसार में महर्षि लोमश न कहलाते। नारद मुनि से कहा कि हे नारद! यदि तुम ऋषियों के ऋण का आदर नहीं करते तो तुम आज सँसार में देवर्षि नारद नहीं कहलाते। आज तुम देवताओं की पूजा करने से ऋषि कहलाये हो। मैं भी काकभुषण्ड कहलाता हूँ क्योंकि मैंने अपने गुरुओं का आदर किया है, माता संस्कृति का आदर किया है।

जब काकभुषण्ड जी ने यह वाक्य कहे तो ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। उस समय यह भी कहा गया था कि ऋषियों का ऋण हमें स्वीकार करना अनिवार्य है। हमारे आदि गुरु ब्रह्मा ने जो पाठ पढ़ाया है उसका आदर करके हमारा जीवन ऊँचा बन जायेगा और हम ऋषि-ऋण से उऋण हो जायेंगे।

देव-ऋण

द्वितीय सूचक हमारा देव-ऋण है। देव-ऋण कौन सा है, देवता हमारे कौन हैं जो हमें देते हैं, लेते नहीं। देते क्या हैं? हमें जीवन देते हैं, हमें आयु देते हैं, हमें मानवता देते हैं उन्हें हम देवता कहते हैं। हमें उन देवताओं का पूजन करना है। हमारे द्वारा कौन-सा प्रतीक

है जिससे हम देवताओं का पूजन कर सकें। इस सम्बन्ध में काकभुषण्ड जी ने प्रश्न किया। सब ही ऋषियों ने कहा "यज्ञाः" कि यज्ञ है जिससे हम सूर्य ग्रहों को ऊँचा बना सकते हैं, उन तक सुगन्धि पहुँचा सकते हैं जिससे हमें तेज मनोकामना के अनुकूल प्राप्त हो। यज्ञ है जो हमें ऊँचा बना सकता है परन्तु यज्ञ के लिये हमें सब सामग्री जुटानी पड़ेगी। जब हमारे द्वारा यज्ञ की सामग्री न होगी तो हमारा यज्ञ भी सम्पन्न न होगा। काकभुषण्ड ने कहा कि हे नारद! हे लोमश! दूसरा सूचक हमारा है यज्ञ हम देवताओं की पूजा करें। देवताओं की पूजा करने से हमारा जीवन ऊँचा बन जायेगा। सब कुछ विज्ञान आ जाता है। इस विज्ञान की चर्चा तो हम कल करेंगे आज तो हमें केवल संक्षेप से इनके वाक्यों की पुष्टी करनी है।

मातृ-ऋण

तृतीय सूचक हमारे द्वारा मातृ-ऋण। मातृ-ऋण क्या है? हम माता का आदर करें, जिस माता के गर्भ से हमने जन्म पाया है उस माता की पूजा करें। कौन सी माता जीवन देती है? यों तो मेरे प्यारे महानन्द जी के कथनानुसार मेरी प्यारी माताएँ अपने गर्भस्थलों से नाना कीड़े उत्पन्न करती रहती हैं परन्तु वह कौन सी माता है जिनका आज हम विश्वम् भवति जिस माता के गर्भस्थल से हमारा जीवन बना है, हम ऋषित्व को प्राप्त हो जाते हैं वह माता ऋषि-माता कहलाती है। कौन सी माता ऋषिमाता कहलाती है? आज तुम्हें बेटा! कंठ होगा माता गार्गी जो ऋषि कहलाई गई। महर्षि व्यास मुनि महाराज की पत्नी मामातुर, उनके गर्भ से श्री शुकदेव का जन्म हुआ। वह ऋषि माता कहलाई गई। माता कौशल्या राम की माता कहलाई गई। वह महान् आत्माओं की माता कहलाई। आज हमें उन माताओं के लिये आदर करना है। वह हमारे द्वारा एक ऋण है। हमें माताओं की पूजा करनी चाहिए। जब माताओं

की पूजा करेंगे तो माता ऊँची बनेगी, माताओं के हृदय में उत्सव होगा। हमें माताओं का आदर करना अनिवार्य है। मुनिवरो! पृथ्वी भी माता है। सँस्कृति भी माता है। हमें सभी माताओं का पूजन करके, इनका आदर करके सँसार-सागर से पार होना है।

स्वर्ग की राह

यह है आज का आदेश जो प्रारम्भ हो रहा था। आज का हमारा वेद पाठ क्या कह रहा था? यह **यजुन्स मुनि सँहिता** का पाठ क्या कह रहा था? मैंने आज से पूर्वकाल में सँहिताओं की चर्चा की परन्तु आज मुझे संहिताओं की चर्चा नहीं करनी है केवल यह उच्चारण करना है कि आज हमें उन ऋषियों का आदर करना है जिन ऋषियों ने हमारे कल्याण के लिये योजना बनाई, जिन्होंने हमारे कल्याण के लिये सब कुछ किया। हमें उस संस्कृति का आदर करना है, उस महान सतोयुग का आदर करना है जो सतोयुग कहलाया जाता है। आज हमें मनुष्य बनना है और पुनः से सतोयुग को लाना है सँसार में। सतोयुग उसी काल में होगा जब हम अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे। यहाँ राजा हो अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाला, राजा-पत्नी हो वह भी अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाली निस्वार्थ हो। प्रजा भी अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाली हो। वैश्य अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले हों। जब इस प्रकार की स्थिति बन जाती है तो यहाँ स्वर्ग आ जाता है सँसार में। यह है आज का हमारा आदेश जो प्रारम्भ हो रहा था। आज इस सम्बन्ध में हमें अधिक व्याख्या नहीं देनी है। वाक्य तो बहुत ही कुछ उच्चारण करने को हैं यह इतना अज्ञात ज्ञान का बन है कि हमें व्याख्यान देने का मार्ग ही प्राप्त नहीं होता। ज्ञान का एक ऐसा मार्ग है जिसको मानव पान करता हुआ सँसार-सागर से पार हो जाता है।

मुनिवरो! सँसार में दैत्य कैसे बनते हैं यह भी आज तुम्हें निर्णय

करा देते हैं, कल भी कहा था कि दैत्य कैसे बनते हैं। राक्षस (दैत्य) दूसरों का कष्ट देने से बनते हैं। यहाँ दैत्यों और देवताओं का संग्राम परम्परा से होता आया है। **देवता वह हैं जो दूसरों की उन्नति चाहते हैं, दूसरों को महान् बनाना चाहते हैं** और दैत्य वह हैं जो उनकी महानता को नष्ट करना चाहते हैं। आज यदि तुम महान् आत्माओं का अपमान करने वाले बनो तो तुम दैत्य कहलाओगे सँसार में। यदि तुम अपने ऋषि-मुनियों का अपमान करने वाले बनोगे तो तुम दैत्य कहलाओगे। तुम्हारा अन्तःकरण उन ग्लानियों से परिपक्व हो जायेगा जहाँ दुर्गन्धि ही दुर्गन्धि रहेगी। आज तुम्हें सँसार में ऋषि-मुनियों का आदर करके चलना है और उनकी वार्त्ताओं को लेकर चलना है। राष्ट्र को, अपने को ऊँचा बनाना है तो ऋषियों के ऋण से उनके उद्देश्य, उनके सूचक हमें लेने हैं। उन ऋषियों से सूचक लेना है जो ऋषि यहाँ आकर उद्देश्य देते हैं परन्तु लेते कुछ नहीं। इस प्रकार राजा और प्रजा को अपने कर्त्तव्य का पालन करना है परन्तु लेना नहीं। अब शेष बातें कल प्रकट की जायेंगी।

पूज्य महानन्द जी—भगवन्! अभी तो आपका समय भी नहीं हुआ है। हमारे प्रश्न रह रहे हैं।

पूज्यपाद-गुरूदेव—बेटा! तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर कल मिलेंगे। समय आज्ञा नहीं दे रहा है।

पूज्य महानन्द जी—जैसी इच्छा हो भगवन्!

पूज्यपाद-गुरूदेव—यह है मुनिवरो! हमारा आज का आदेश। आज के आदेशों का अभिप्राय था कि शिखा और यज्ञपवीत आर्यों का भूषण है। हमें इस भूषण की रक्षा करनी है। आज यदि मेरे प्यारे महानन्द जी के कथनानुसार यही स्थिति सँसार की बनी रही तो भूषण एक समय समाप्त हो जायेगा। आज हमें इस भूषण की रक्षा करनी है। इस भूषण की रक्षा होगी अपने कर्त्तव्य का पालन करने से। यह बेटा! तुम्हें ज्ञात होगा मैने कई लाख वर्ष पूर्व यह

कर्म किया था जो आज भोगा जा रहा है। यह सब कुछ क्या है? यह सब कुछ अपने-अपने कर्मों के संस्कार और भोग हैं। सँसार में इन्द्र का प्रकोप क्यों होता है इसका भी संक्षेप उत्तर यह है कि सँसार में यह विनाशता सब प्रजा के भोग होते हैं, कर्म होते हैं, यह सबकी भावनाएँ होती हैं। जब मनुष्य एक पग आगे चलता है और पाप उसके पग में भरा हुआ है तो क्यों न वह कर्म उसे भोगना पड़ेगा। जब निस्वार्थ कार्य होगा और इच्छा के अनुसार तुम्हें फल देगा और जब तुम्हारे एक-एक पग में स्वार्थ है, ऋषि ऋण को नहीं जान रहे हो, परमात्मा को भुलाते जा रहे हो तो क्यों न तुम्हारी स्थिति ऐसी होगी। ऐसी स्थिति अनिवार्य है, स्वाभाविक है।

यह है आज का हमारा आदेश! कल समय मिलेगा तो विस्तार से इन वार्त्ताओं को प्रकट कर देंगे। अब हमारा यह आदेश समाप्त हो चुका है। अब वेदों का पाठ होगा। इसके पश्चात् वार्त्ता समाप्त हो जायेगी।

पूज्य महानन्द जी—धन्य हो भगवन्!

भगवन्! आज का आपका आदेश कुछ सुन्दर लगा।

पूज्यपाद-गुरूदेव—हास्य.....कुछ सुन्दर।

पूज्य महानन्द जी—हाँ भगवन्!

पूज्यपाद-गुरूदेव—हास्य.....अच्छा धन्यवाद!

वेद पाठ.....।

दिनांक : 26 जुलाई, 1963

स्थान : सतभ्रांवा आर्य हायर सैकेण्डरी स्कूल, करोल बाग, नई-दिल्ली

॥ ओ३म् ॥

ऋषियों के उद्‌गार

1. जितना भी यह जगत है यह सब प्रभु के गर्भ में रमण कर रहा है।
2. दोनों ही विज्ञानों में उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा दृष्टिपात आ रही है।
3. रजोगुण और तमोगुण की प्रतिभा मानव को अभिमान में ला देती है।
4. अभिमान ही मृत्यु का कारण हो जाता है।
5. राजा हो, मानव हो, कोई भी हो जिसको आत्मा धिक्कारता हो वह मानव मृत्यु के मुख में विराजमान रहता है।
6. मन की जो संलग्नता है, मन का जो सम्बन्ध है वह प्रत्येक नाड़ियों से होता है क्योंकि मन संसार में व्यापक होता है।
7. इस संसार में जो कुछ तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है यह मन और प्राण की ही रचना दृष्टिपात आ रही है। दोनों का मिलान, वह केवल हम यौगिकता से ही कर सकते हैं।
8. सँसार में दोनों वस्तुएं—विभाजन होने वाला और विभाजन करने वाला मन ही है।
9. मन को स्थिर करना यह मानव का कर्त्तव्य है। प्राणों को संगठित करना, प्राणों को मन से मिला देना यह मानवता कहलाई गई है।
10. मन को घृणात्मक नहीं बनाना चाहिए जितनी मन में घृणा होगी उतनी ही मानव के विचारों में संकुचितता होगी।
11. सँसार में मानव के आने का उद्देश्य केवल अपनी चेतना को जानना है।
12. हमारी जो दार्शनिकता है यह केवल मन और प्राण के आधार पर है।
13. हमारे शरीर में पाँच प्राण होते हैं—प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान।
14. कर्त्तव्य में जीवन होता है, महत्ता होती है, विचित्रता होती है।
15. यदि राजा के राष्ट्र में चरित्र नहीं रहता तो उस राजा का राष्ट्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।
16. यदि मानव का चरित्र सुन्दर नहीं है तो वह परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता।

OM

Lord Krishna

Lord Krishna's journey to Mars

Lord Krishna also knew how to make a trip to Mars. For that purpose he had coined a 'yantra' named 'Saukik Jap' through which he could transcend to the realm of subtle structures of the order of second, third, fourth, fifth, sixth and seventh submultiples of atomic size. The seventh submultiple is so subtle and potent that it is able to scan Mars planet. Sages ! Lord Krishna would embark on the 'Yantra' carrier and travel to the other worlds. But, having transcended upto his pure 'self' he could move anywhere in the cosmos. His life has been known to be so much full of grandeur. Using my own expression, I would say the Lord Krishna's personality was so great that he never indulged in sin throughout his life. Learning from dear Mahanandji about the deteriorated condition of social set-up of the modern times, I always pray to the Almighty that holy souls like that of Lord Krishna should manifest again in this world for the redemption of mankind and the reformation of social set-up. Man should again rise to the peak of both kinds of knowledge. When every man and woman is illuminated with that comprehensive knowledge then no sin is committed. Where no sin is committed there thought currents are unconditioned. And where the thought currents are unconditioned, there man is striving constantly for peace and happiness. Therefore we have to peruse Lord Krishna' s life and try to emulate that beatitude into our own lives.

I can recollect that on this day Lord Krishna's descent was being eagerly awaited on this planet. In the bosom of every man and woman there was an acute desire to welcome such a holy soul. It is a natural order that all divine souls make their corporeal appearance to sport life in times of distress. Maharaja Giansaruti had similarly advised his minister that great souls are never born in palatial buildings.

Once Maharaja Giansaruti asked his minister to go and find out some 'Brahma-Giani'. The minister started the search in big

houses. After having probed unsuccessfully the big places on the whole earth, he confessed his failure before the king. The king enquired as to where the search was made. The minister assuredly affirmed that he has been to all the big places on the earth. The king said, "Do you expect 'Brahma-Gianis' to be living in stately and high buildings? Brahma-Gianis are not to be found in such houses, Go and search for them in fearful jungles". Thereupon, acting" on Giansaruti's direction, the minister entered a dense forest. During his quest he came across sage Rewak. The sage was passing his life under a cart. Falling at his feet in reverence, the minister said, "Sir, who are you ? I have come in search". The sage said, "I am called Rewak and am known by the name" Rewak the cartman" The minister then further asked, "Sir, are you the sage Rewak ?" The sage replied that he was not called as sage but was definitely called Rewak. The sages are so pure and open-hearted that they never speak high of themselves.

So after being blessed by the meeting with the sage Rewak, the minister approached again the king Giansarutti. He said to the king, "You Majesty ! I have seen the sage known as Rewak the cartman and have returned after being blessed by his 'darshan'. His 'darshan' gives immortality. Giansaruti was all full of appreciation. So my beloved sages ! The object of all this narration is to establish that the birth of all great persons invariably takes place not in celebrated houses but in distressed places. Lord Krishna was born in the prison of king Kansa. How superceding, how great the life of prison-born Lord Krishna was. How sublimated his life was with wholesomeness! Detailed features of his life will be mentioned by me tomorrow. Today I have to confine myself to impress that he was adept in both the spiritual and the scientific knowledge. His life was always engaged in the promotion of Vedic Culture.' He was ever absorbed in the perusal of profound subjects. It is observed that, once in his life time, he remained so much occupied in the investigation of the Swanbhan line that he did not even take his food for ten days. There was never a chance in his life-time that he should have even thought of committing a sin through his worldly manifestation.

So my dear sages ! The moral of our talk today is that we should sincerely, in right earnest, dwell upon the true interpretation of the lives of great oersons. That way only our lives can be sublimated, otherwise there is no other alternative. We should contemplate upon Lord Krishna's life. He had said, "0, Arjuna ! you do not know about the many many ·previous births because my birth is always blessed with Yogic-realization and beauty. Therefore, O, Arjuna ! To-day you try to understand me. This knowledge, which I am giving to you todav, was given by me to Ikshwaku and Surya, right in the very begining and on subsequent occasions also." So to-day, we have to honour the earnestness of such great persons and thereby embrace the Vedic Culture which is rich in both spiritual and scientifc knowledge.

Dear mahanandji has apprised me that the world of to-day is journeying to the Moon. But my son, what of that? In the distant past people used to travel even to Mars and mercury etc. With the passage of time Science goes on progressing. Spiritual wisdom also gains higher momentum. It is all a periodic function and goes on cycling. Man is always eager to know. He is ever promoted to investigate into every thing. Indeed, he should have that quest. Having had knowledge, he should illuminate his life so that the Vedic Culture is preserved and constantly developed in order to impart greater and greater novelty to the meaning of life. Through Vedic traditions only novelty and wholesomeness emerge. To-day I have not corne to deal with anything specific. The sum and substance of our talks today is that, dwelling upon the lives of great persons, we would be sublimating our own lives by which our lives are purified and promoted to higher orders. Tomorrow I shall make more specific mention of Lord Krishna's spiritual and Scientific knowledge. Lord Krishna has stated that Dharma and human values should be protected in a sovereign state. The protection of Dharma and humanity implies one and the same thing because violence-based state should not be there. The milch cattle should be in abundance. And, when they abound, there will be prosperity and wisdom in the country. This is all our talk to-day.

Pujyapad Gurudev

।। ओ३म् ।।

स्मृति

श्री धर्मवीर सिंह

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के साहित्य को प्रकाशन व प्रचार में प्रोत्साहन प्राप्त करने के लिए 2100 रुपये का अनुदान श्री सुभाष त्यागी निवासी ग्राम सैंतली, जिला गाजियाबाद, उ.प्र. ने अपने स्वर्गीय पिता श्री धर्मवीर सिंह त्यागी जी की स्मृति में अत्यन्त विनम्र व उदार भाव से अर्पित किया है।

त्यागी जी के पिता जी बचपन से ही अपने पैतृक कार्य कृषि में संलग्न थे और अपने को शारीरिक रूप से सम्पन्न रखते हुए कुश्ती लड़ने के लिए लोकप्रिय बने हुए थे। युवा अवस्था के समय चल रहे स्वतन्त्रता संग्राम में अपने ग्राम में रहते हुए भी पूर्ण रूप से सक्रिय रहे और अपनी दक्षता से उसमें निरन्तर अपनी आहुति करते रहते थे परन्तु उसके लिए प्रतिदान की कभी कल्पना भी नहीं की। धर्म पत्नी के वियोग के उपरान्त अपने बच्चों व पिता जी के दायित्वों का निर्वाह अपनी कार्यकुशलता व धैर्य से करने में सहनशीलता से सफल रहे। अपने जीवन के मुख्य उद्देश्य के प्रति पूर्ण जागरूकता से ईश्वर भक्ति में संलग्न रहते हुए अपने आत्मिक बल से सम्पन्न बने रहे।

ऐसे मननशील एवम् श्रद्धालु पिता जी की स्मृति में जो सहयोग श्री त्यागी जी ने समिति को प्रदान किया है उसके लिए समिति हृदय से आभार प्रकट करती है और समस्त परिवार की सुख, शान्ति, दीर्घायु एवम् सर्वतोन्मुखी समृद्धि के लिए परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करती है।

वैदिक अनुसन्धान समिति

नम्र-निवेदन

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज ने अपने प्रवचनों में वेद मन्त्रों का गुणगान करते हुए उनकी प्रचलित भाषा में व्याख्या की है। उसी अमृत वाणी को जनकल्याण के लिए ''सँहिता'' के रूप में प्रकाशित करने के लिए वैदिक अनुसन्धान समिति सभी श्रद्धालु एवम् दानदाताओं से सहयोग के लिए आह्वान करती है जिससे कि प्रकाशन का कार्य सुचारू रूप से ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होता रहे। सहयोग की राशि समिति के बैंक खाते में स्वेच्छानुसार भेजने के लिए बैंक का विवरण निम्न प्रकार से है :-

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)
पंजाब नैशनल बैंक, खान मार्केट, नई दिल्ली
बैंक खाता नं. - 0149000100229389, IFSC Code – PUNB–0014900
website : www.shringirishi.in
Email : contact@shringirishi.in

सूचना

सभी आजीवन/वार्षिक सदस्यों को 'यौगिक प्रवचन' पत्रिका प्रत्येक मास की 10/11 तारीख को प्रेषित की जाती है। किसी भी सदस्य को पत्रिका प्राप्त न होने की स्थिति में अपने पोस्ट मैन से एक सप्ताह के समय में जानकारी करें और फिर भी न मिलने की स्थिति में अपने सम्बन्धित पोस्ट ऑफिस में इस विषय में लिखित एक प्रार्थना-पत्र पोस्ट मास्टर साहब को दें जिससे कि पत्रिका न मिलने की खोज-बीन डाक विभाग द्वारा कराके आपकी पत्रिका आपको समय पर मिलनी प्रारम्भ हो जाए। कृपया प्रार्थना-पत्र की एक प्रति पर डाक विभाग द्वारा प्राप्ति के हस्ताक्षर व मोहर लगवाकर हमें भी भेज देवें जिससे कि इस विषय में यहाँ भी डाक विभाग को अवगत करा दिया जाए।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)

योगनिष्ठ पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (शृङ्गी ऋषि जी) की अमृतवाणी संहिता के रूप में

*1.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 1)	80.00
*2.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 2)	80.00
3.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 3)	60.00
4.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 4)	60.00
5.	यौगिक प्रवचन माला (भाग 5)	60.00
6.	Yogic Wisdom of Ancient Rishis	80.00
7.	वेद पारायण-यज्ञ का विधि विधान	25.00
8.	आत्म-लोक	35.00
9.	धर्म का मर्म	40.00
10.	शंका-निवारण	30.00
11.	यज्ञ-प्रसाद अर्थात् यज्ञ का महत्व	40.00
12.	आत्मा व योग-साधना	35.00
*13.	देवपूजा	50.00
14.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 1)	125.00
15.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 2)	125.00
16.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 3)	125.00
17.	रामायण के रहस्य	35.00
18.	यज्ञ एवं औषधि विज्ञान	40.00
19.	महाभारत के रहस्य	30.00
20.	अलङ्कार-व्याख्या	35.00
21.	रावण-इतिहास	50.00
22.	महाराजा-रघु का याग	30.00
23.	वनस्पति से दीर्घ-आयु	35.00
24.	मोक्ष प्राप्ति का मार्ग	35.00
25.	चित्त की वृत्तियों का निरोध	35.00
26.	आत्मा, प्राण और योग	35.00
27.	पञ्च-महायज्ञ	35.00
28.	अश्वमेघ-याग और चन्द्रसूक्त	40.00
29.	याग-मन्जूषा	40.00
30.	आत्म-दर्शन	30.00
31.	पुत्रेष्टि-याग और मातृ-दर्शन	30.00
32.	याग और तपस्या	60.00
33.	यागमयी-साधना	35.00
34.	यागमयी-सृष्टि	35.00
35.	याग-चयन	40.00
36.	दिव्य-रामकथा	120.00
37.	ज्ञान-कर्म-उपासना	35.00
38.	दिव्य-ज्ञान	40.00
*39.	महाभारत एक दिव्य दृष्टि	90.00
40.	महर्षि-विश्वामित्र का धनुर्याग	40.00
41.	आत्म-उत्थान	40.00
42.	तप का महत्व	40.00
43.	अध्यात्मवाद	40.00
44.	ब्रह्मविज्ञान	40.00
45.	वैदिक-प्रभा	35.00
46.	प्रकाश की ओर	35.00
47.	कर्तव्य में राष्ट्र	40.00
48.	वैदिक-विज्ञान	35.00
49.	धर्म से जीवन	35.00
50.	आत्मा का भोजन	40.00
51.	साधना	35.00
52.	त्रेताकालीन-विज्ञान	40.00
53.	यज्ञोमयी-विष्णु	40.00
54.	यौगिक प्रवचन माला भाग-6	80.00
55.	स्वर्ग का मार्ग	40.00
*56.	यौगिक प्रवचन माला भाग-7	80.00
57.	माता मदालसा	50.00
58.	यौगिक प्रवचन माला भाग-8	80.00
59.	यौगिक प्रवचन माला भाग-9	80.00
60.	यौगिक प्रवचन माला भाग-10	80.00
61.	याग एक सर्वाङ्ग पूजा	80.00
62.	यौगिक प्रवचन माला भाग-11	80.00
*63.	यौगिक प्रवचन माला भाग-12	80.00
64.	मानव कल्याण की चर्चाएं	50.00
65.	प्रभु-दर्शन	50.00
*66.	यौगिक प्रवचन माला भाग-13	80.00
67.	समाज उत्थान का मार्ग	50.00
*68.	यौगिक प्रवचन माला भाग-14	80.00
*69.	ब्रह्म की ओर	50.00
70.	ईश्वर मिलन	50.00
71.	यौगिक प्रवचन माला भाग-15	80.00
72.	यौगिक प्रवचन माला भाग-16	80.00

*सहजिल्द का मूल्य 20 रु. अतिरिक्त है।

पुस्तक प्राप्ति के स्थान

योगनिष्ठ पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज की अमृतवाणी का साहित्य सँहिता, कैसेट्स, सी. डी. व डी. वी. डी. के रूप में निम्न स्थानों पर उपलब्ध हैः–

1. श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, लाक्षागृह, बरनावा, जिला–बागपत, (उ.प्र.)। मोबाइल नं 09719622950
2. श्री गुरुवचन शास्त्री, मकान नं. 165/30ए, दक्षिण भोपा रोड़, निकट माढ़ी की धर्मशाला, नई मण्डी, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)। मोबाइल नं. 09412888050
3. सुश्री. नीरू अबरोल, के-3 लाजपत नगर-3, नई दिल्ली। दूरभाष नं. 011-41721294
4. डॉ. मधुसूदनेश्वर प्रकाश, A-59 पंचशील एन्क्लेव नई दिल्ली-110017 दूरभाष नं. 011-41030481
5. श्री जितेन्द्र चौधरी, ए-84, मालवीय नगर, नई दिल्ली-110017, मो. नं. 9811707343
6. श्री अनिल त्यागी, सी-47 रामप्रस्थ, गाजियाबाद (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0120-4165802
7. श्री आशीष त्यागी, डी-293, रामप्रस्थ, पोस्ट ऑफिस चन्द्रनगर, गाजियाबाद पिन कोड-201011 (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0120-2642052
8. श्री लोमश त्यागी, 106/4 पंचशील कालोनी गढ़ रोड़, मेरठ, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09410452076
9. श्री विवेक त्यागी, 16ए, अशोक कॉलोनी, अल्कापुरी, हापुड़, (उ.प्र.)। दूरभाष नं. 0122-2316196
10. श्री संजीव त्यागी, 1107, सैक्टर-3, बल्लभगढ़, फरीदाबाद हरियाणा। मोबाइल नं. 09910589486
11. मैं. हर्ष मेडिकोज, ए-2/31, सैक्टर-110–मार्किट नोएडा, फेस-2, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 9899228860, 9871367937
12. पवन त्यागी सुपुत्र श्री राजाराम त्यागी, मौ. खड़खड़ियान, माता, ग्राम खरखौदा, जिला मेरठ (उ.प्र.) मोबाइल नं. 7536097171
13. श्रीमती बाला, 251, दिल्ली गेट, नई दिल्ली। दूरभाष नं. 011-23282088
14. डॉ. अशोक कुमार आर्य, आर्यावर्त कालोनी निकट मुरादाबादी गेट, अमरोहा, जिला-जे.पी. नगर (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09412139333
15. श्री सुमन कुमार शर्मा, जे-380, सैक्टर बीटा-2, ग्रेटर नोएडा, (उ.प्र.) मोबाइल नं. 09313530505
16. श्री सतीश भारद्वाज, ग्राम बहेडी, रोहाना मिल, जिला मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)।
17. मैं. विजय कुमार, गोविन्द राम हासानन्द, 4408, नई सड़क, दिल्ली। दूरभाष नं. 011-23977216

मासिक सहयोग

श्री हरीराम गुप्ता, केसर स्टील, वजीरपुर, दिल्ली	1000 रुपये
श्री चिंतामणि त्यागी एवं श्री जगमोहन त्यागी बरला, मुजफ्फरनगर	1000 रुपये
श्री संजीव त्यागी (दिनकरपुर) फरीदाबाद, हरियाणा	1000 रुपये
श्री अरुण त्यागी, राजनगर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश	500 रुपये
श्री विनोद त्यागी सुपुत्र श्री जयप्रकाश त्यागी मकनपुर, गाजियाबाद	500 रुपये
मा. कार्तिक त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	251 रुपये
मा. लोमश त्यागी सुपौत्र श्री रामनिवास त्यागी ग्राम भंगेल, नोएडा	251 रुपये
डॉ. शुचि, डॉ. राजीव चावला, आणद, गुजरात	250 रुपये
श्री राकेश शर्मा, विराट नगर, पानीपत, हरियाणा	250 रुपये
श्री कृष्ण लाल बत्रा, इन्द्री, जिला करनाल	201 रुपये
मास्टर कवन्धि, रामप्रस्थ, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश	101 रुपये
मास्टर सिद्धार्थ, अँकुर अपार्टमैन्ट, दिल्ली	101 रुपये
मास्टर अभ्युदय त्यागी, न्यू जर्सी, अमेरिका	101 रुपये

विशेष सूचना

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज द्वारा संस्थापित **वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.), नई दिल्ली** उनकी अमृतवर्षा को मूल रूप से उपलब्ध प्रवचनों से निरन्तर प्रकाशित कर रही है जिसमें कि वेद मन्त्रों व उपनिषदों का सार सरल भाषा में निहित है। अतः आत्म कल्याण के लिए समिति द्वारा प्रकाशित साहित्य का अध्ययन करके अपनी लुप्त हुई सम्पदा से आत्म विभोर होने का प्रयास करें।

वैदिक अनुसन्धान समिति

योगमुद्रा में प्रवचन करते हुए पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

उद्‌बोधन

हमें विचारना है कि हम सर्वत्र प्रभु को दृष्टिपात् करें, कण-कण में जब हम प्रभु को दृष्टिपात् करते हैं तो मानव पाप-कर्म नहीं करता। मानव पाप-कर्म उस काल में करता है जब परमात्मा को अपने से दूर कर देता है और दूर क्यों कर देता है? केवल अज्ञानता के वश क्योंकि वह प्रभु को जानता नहीं। जो मानव प्रभु को जानता है वह पाप नहीं करता, पाप वही मानव किया करता है जो प्रभु से दूर हो जाता है। जो प्रभु को कण-कण में, मनों में, चक्षुओं में, श्रोत्रों में, प्रत्येक इन्द्रिय में प्रभु की प्रतिभा स्वीकार करता है। जिसने जो वस्तु बनाई है उसमें वह रमण भी कर रहा है और जब मानव को यह निश्चय हो जाता है तो वहाँ मानव पाप नहीं करता।

पूज्यपाद-गुरुदेव

वर्ष 45 : अंक : 538
जुलाई 2017

मूल्यः
दस रुपये

POSTED AT N.D.PS.O ON 10/11-7-2017
Published on 5th day of the same month